जन्म शताब्दी पुस्तकमाला- ६१

दुर्गति और सद्गति का कारण हम स्वयं

(प्रवचन)

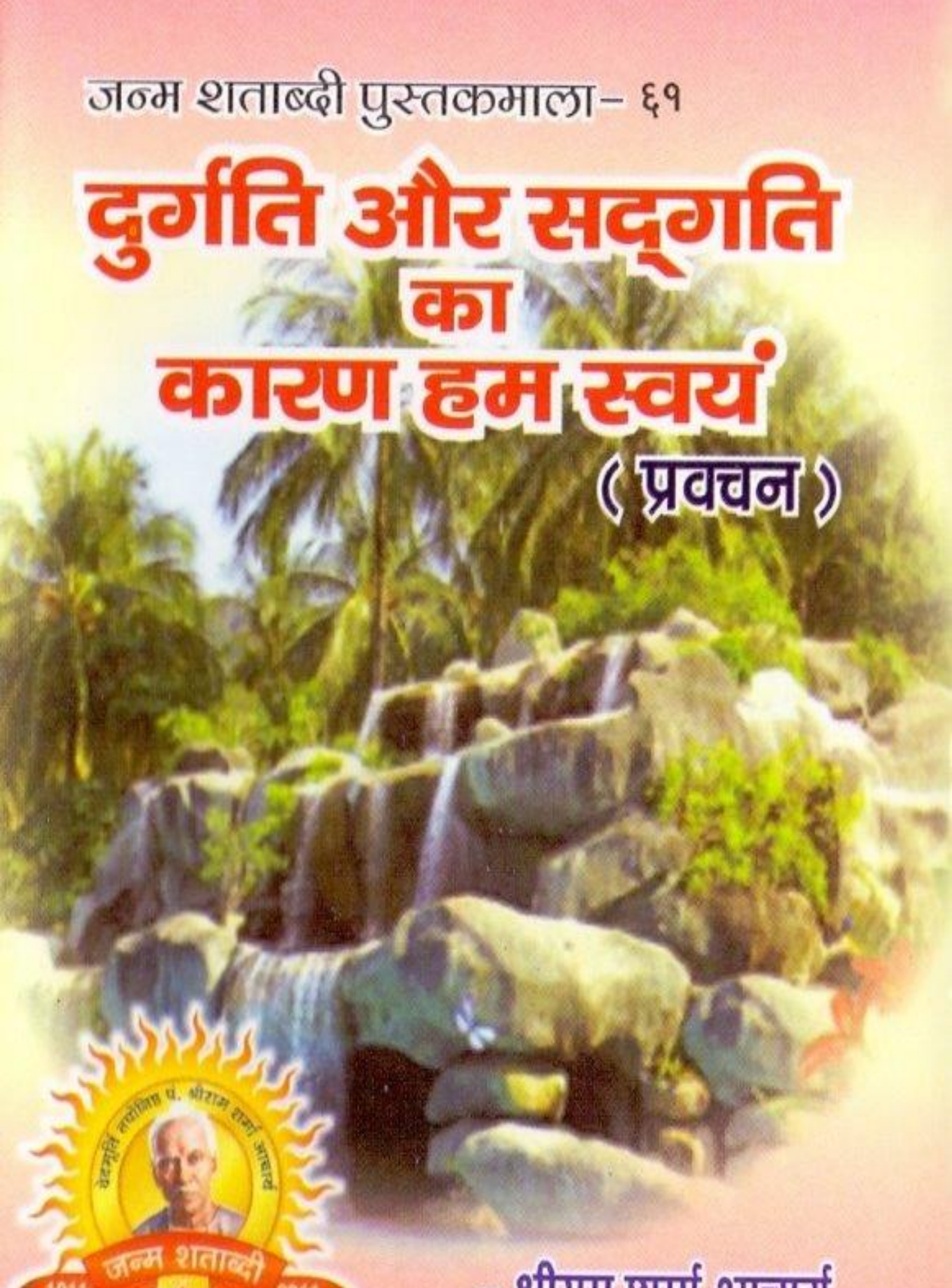

दुर्गति और सद्गति का कारण हम स्वयं

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

देवियो और भाइयो! स्रष्टा ने मनुष्य जीवन विशेष उद्देश्य के लिए बनाया है और विशेष उपहार के रूप में दिया है। भगवान ने अपने कार्य में, अपने विश्व उद्यान में सहायता करने के लिए इसको सुरम्य और समुन्नत बनाने के लिए मनुष्य को अपने सहायक के रूप में पैदा किया। उसको जो अनेक विशेषताएँ दी हैं, वह एक अमानत के रूप में, एक धरोहर के रूप में दी हैं, ताकि इसका ठीक तरीके से उपयोग करके वह अपने व्यक्तिगत जीवन में सरलतापूर्वक सारा काम चला सके और निर्वाह कर सके। उसके पास जो समय बचे, शक्तियाँ बचें, उससे विश्व उद्यान को समुन्नत बनाने के लिए प्रयत्न करना उसके

लिए संभव बन सके। इस दृष्टि से मनुष्य शरीर बनाया, शौक-मौज के लिए नहीं बनाया। शौक-मौज के लिए अगर मनुष्य शरीर बनाया होता तो फिर यह बहुत भारी पक्षपात गिना जाता। अन्य प्राणियों को जो सुविधाएँ नहीं मिलीं, वह मनुष्य को ही क्यों दी गईं? इसका एकमात्र उत्तर यही है कि जिस तरह विशेष तरीके से एक खजांची के पास खजाना जमा कर दिया जाता है, मिनिस्टर के पास विशेष अधिकार केंद्रित कर दिए जाते हैं, उसी प्रकार भगवान ने मनुष्य को विशेष अधिकार दिए हैं, ताकि वह इस विश्व उद्यान को सुंदर, समुन्नत, सुविकसित बनाने के लिए भगवान के कार्य में मदद करे। हममें से प्रत्येक का कर्त्तव्य है कि उस परम पुनीत उत्तरदायित्व को समझें जो भगवान ने हमारे ऊपर सौंपा है।

यह हमारा बड़ा सौभाग्य है कि भगवान की इच्छा पूरी करने के साथ-साथ में उपहार के रूप में अपने जीवन का लक्ष्य भी प्राप्त कर सकते हैं। पूर्णता का लक्ष्य इस तरीके से प्राप्त कर सकते हैं कि

हम भगवान की इच्छाओं को पूरा करें और अपने गुण-कर्म-स्वभाव का विकास करें। इनका विकास करने से ही यह संभव है कि हमारी आत्मा विकसित हो और आत्मा विकसित होते हुए परमात्मा के स्तर तक पहुँचने में समर्थ हो सके। इसलिए हमको स्रष्टा की इच्छा पूरी करने के लिए कटिबद्ध होना चाहिए। ऐसा यदि हम कर सकें तो हमें अध्यात्मवादी कहा जाएगा। अध्यात्म का सारे का सारा शिक्षण इसी उद्देश्य के लिए है कि व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों को समझे और उत्तरदायित्वों को समझे। कर्त्तव्य और उत्तरदायित्वों को समझते हुए अपनी गतिविधियों का निर्धारण इस तरीके से करे, दृष्टिकोण का निर्माण इस तरीके से करे जिसमें व्यक्ति चरित्रनिष्ठ बनता हो, शालीन बनता हो और समाज में सुव्यवस्था पैदा करने में सहायक बनता हो। यही है जीवन का उद्देश्य।

आश्चर्य इस बात का है कि मनुष्य के पास जहाँ इतनी बुद्धि और सुविधा-साधन दिए गए, वहाँ

उसको हँसी-खुशी का जीवन जीना चाहिए था, हलका-फुलका जीवन जीना चाहिए था। इतनी सुविधा उसके पास रहनी चाहिए थी कि अपना गुजारा बहुत कम में करने के बाद सुख-सुविधा प्राप्त करने के बाद में सारा समय हँसी-खुशी के साथ भगवान के कामों में लगा सकने में समर्थ रहा होता। ऐसा ही जीवन निर्माण हमारे लिए हुआ है, लेकिन अचंभा इस बात का है कि हममें से अधिकांश आदमी कठिनाइयों में फँसे हुए हैं। अधिकतर आदमी आपत्तियों में रोते और खीझते हुए देखे जाते हैं तो वे आगे कैसे बढ़ेंगे? जब आपत्तियाँ ही रास्ता रोके खड़ी हैं, कठिनाइयाँ ही पग-पग पर हैरान कर रही हैं, तो आगे वाली बात कैसे बन सकती है? अब यह देखना चाहिए कि आखिर हुआ क्या? कैसे ऐसी स्थिति आ गई? जब भगवान ने हमको इतने साधन दिए थे कि उन साधनों से हम अपना उद्देश्य पूरा कर सकते थे, पर उन्हें पूरा करना तो दूर उलटे कठिनाइयों में ही जकड़े रह गए, मुसीबतों में ही

फँसे रह गए। बात कैसे बनेगी? आइए हम लोग इस पर विचार करें।

जब हम विचार करते हैं, तब मालूम पड़ता है कि हमारे भीतर, हमारे चिंतन में और हमारे क्रिया-कलापों में कहीं भूल पड़ जाती है। इस भूल का ही परिणाम है कि हमारी मन:स्थिति दुर्बल होने से, विकृत होने से हमारे बहिरंग जीवन में सारी की सारी परिस्थितियाँ विकृत होती चली जाती हैं और हम अभावों, कष्टों और संकटों से ग्रसित होते चले जाते हैं। अगर हम अपने दृष्टिकोण को परिष्कृत कर सकें, अपनी गतिविधियों को सही कर सकें, अपने क्रिया-कलापों में हेर-फेर कर लें, तब वे सारी समस्याएँ जो मनुष्य जाति को खाए जा रही हैं, जिनसे आदमी को हर वक्त बेचैन रहना पड़ता है, हर समय कष्ट से घिरा रहना पड़ता है, जिससे पार पाने के लिए वह हर किसी के सामने पल्ला पसारता और नाक रगड़ता है कि आप हमारी सहायता कीजिए, तब किसी की भी सहायता प्राप्त न करनी पड़े।

अध्यात्म की शिक्षा यही है कि अपने भीतर हम देखें, अपने आप को समझें, अपने आप को जानें। अपनी गलतियों के बारे में गौर करें और अपनी गतिविधियों को ठीक करने के लिए प्रयत्न करें। अगर हमने ऐसा प्रयत्न प्रारंभ कर दिया तो समझना चाहिए कि सच्चे अर्थों में हम अध्यात्मवादी हुए।

कीचड़ जहाँ कहीं भी सड़ती है, वहाँ दुर्गंध फैल जाती है, रेंगने वाले कीड़े जहाँ-तहाँ घूमना शुरू हो जाते हैं, मक्खी-मच्छर पैदा हो जाते हैं। इनमें से प्रत्येक विकृति को हम दूर करना चाहें तो कठिन है, लेकिन यदि कीचड़ की गंदगी को साफ कर दिया जाए तो वह सब विकृतियाँ दूर हो जाएँगी जिनसे हम परेशान थे। यही बात हमारे जीवन में भी लागू होती है। हँसता-हँसाता, खिलता-खिलाता जीवन हमारा होना चाहिए था। हमको प्रसन्न और प्रफुल्लित रहना चाहिए था। हमारी शक्ति ऐसी होनी चाहिए थी कि अपनी हलकी जिंदगी को स्वयं पार कर लें और अपने कंधे पर बिठाकर दूसरों को पार

लगा दें, लेकिन ऐसा बन नहीं पड़ता। इसका कारण यह है कि हमारे जीवन में जो अशुद्धियाँ छाईं हुईं हैं, उनसे हमारा मानसिक रक्त दूषित हो गया। जिस प्रकार रक्त के दूषित हो जाने पर फोड़े-फुन्सियों का निकलना स्वाभाविक है, उसी प्रकार जीवन में असंख्य विकृतियों के आ जाने से असंख्य चिंताओं, हैरानियों, परेशानियों का निकलना संभव है। इसको दूर करने के लिए उन स्त्रोतों को बंद करना पड़ेगा जहाँ से ये फूटती हैं। शरीर की बीमारियों को ही लें, तो शरीर की मशीन इतनी अच्छे तरीके से बनाई गई है कि इसको प्राकृतिक नियमों के अनुरूप अगर ठीक तरीके से चलाया जा सके तो न इसमें कमजोरी आने की कोई गुंजाइश है और न बीमार पड़ने की।

प्रकृति में हम दृष्टि डालकर देखते हैं तो सृष्टि का कोई प्राणी बीमार नहीं पड़ता। बुढ़ापा तो सबको आता है, मरना भी सबको पड़ता है, पर बीमारी नाम की कोई चीज किसी भी योनि में दिखाई नहीं पड़ती। कहीं भी किसी को रोता-कराहता बीमारी

से नहीं पाया जाता, केवल एक अभागा प्राणी मनुष्य ही है, जो बार-बार बीमार पड़ता रहता है। इसका कारण क्या है? इसका एक ही कारण है कि हमने आहार-विहार के संबंध में असंयम बरतना शुरू कर दिया। जीभ हमारी बेकाबू रही। जो चीज नहीं खानी चाहिए थी, वह हम खाते रहे। जितनी तादाद में नहीं खाना चाहिए उससे ज्यादा तादाद में खाई। फलस्वरूप हमारा पेट खराब हुआ। पेट खराब होने, उसमें सड़न होने की वजह से असंख्य बीमारियाँ खड़ी हो गईं। अगर हम इसको ठीक करना चाहते हों तो दवाइयों से न तो रोग ठीक हो सकते हैं और न टॉनिक खाने से, औषधियों से हमारी कमजोरी दूर हो सकती है। कमजोरी दूर करने के लिए, बीमारियों को दूर करने के लिए चाहे अब, चाहे अब से एक हजार वर्ष बाद अंततः एक ही उपाय काम में लाना पड़ेगा कि हम संयम बरतना सीखें। इंद्रियों का निग्रह करना सीखें। समय का नियंत्रण करना सीखें। आलस्य और प्रमाद से अपनी शक्तियों का जो क्षरण होता

रहता है, उसकी रोकथाम करना सीखें। अगर हमने यह सब सीख लिया तो हमारे स्वास्थ्य की गारंटी, फिर हम दीर्घजीवी बनेंगे और नीरोग रह सकेंगे, भले ही हमें सस्ते मूल्य का भोजन ही क्यों न मिलता हो। गरीबी में ही निवास क्यों न करना पड़ता हो। फिर हमें किसी चिकित्सक के पास जाने की जरूरत नहीं पड़ेगी, अगर हम संयमरूपी चिकित्सक की सहायता लेनी शुरू करें तब। यह आध्यात्मिकता की शिक्षा है कि हम भीतर देखें और बीमारियों की जड़ काटकर दूर करें। असंयम को हटाएँ और सुंदर स्वास्थ्य पाएँ।

मानवीय मस्तिष्क की ओर हम देखते हैं तो मालूम पड़ता है कि इतनी बढ़िया मशीन, इतना सुंदर कंप्यूटर कदाचित ही दुनिया में कहीं पाया जाता हो। मानवीय मस्तिष्क में स्वर्ग के सारे के सारे तत्त्व भरे पड़े हैं। दृष्टिकोण आदमी का अच्छा हो तो हर जगह सौंदर्य, हर जगह प्रसन्नता, हर जगह सद्गुण, सहयोग बिखरा हुआ दिखाई पड़ेगा। सृष्टि

में जहाँ कहीं भी मनुष्य अपनी दृष्टि पसारकर देखेगा तो मालूम पड़ेगा कि इसमें सर्वत्र सद्भावनाएँ भरी पड़ी हैं। लेकिन हम देखते हैं कि इस मस्तिष्क के द्वारा जिस तरह का चिंतन करना चाहिए था, जो काम करना चाहिए था, उसको तोड़-मरोड़ करके ऐसा बना दिया गया है कि शुद्ध चिंतन करने की अपेक्षा अशुद्ध चिंतन में ही सदा उलझा रहता है। ईर्ष्याएँ, डाह, चिंताएँ, निराशाएँ, भय, आशंकाएँ आदि जिनके कोई वास्तविक कारण नहीं होते हमारे ऊपर छाई रहती हैं और जीवन को नरक रूप में बनाए रखती हैं। अगर वास्तविक कारण हों भी तो आदमी उसको स्वाभाविक एवं सामान्य समझकर के हँसी-खेल में भी टाल सकता है, लेकिन प्राय: वह राई भर की बात को पहाड़ के बराबर बनाकर के रात-दिन उद्विग्न बना रहता है। अगर मस्तिष्क को ठीक रखा जा सके तो हम इसी मस्तिष्क के द्वारा भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए न जाने कितने द्वार खोल सकते हैं। यदि यह न बन पड़े तो कम से कम

इतना तो कर ही सकते हैं कि चारों ओर जो भय, आशंकाएँ, निराशाएँ दिखाई पड़ती हैं, उनसे तो दूर बचे ही रह सकते हैं।

दरिद्रता पैसे की कमी का नाम नहीं है, वरन मनुष्य की आंतरिक कृपणता का नाम दरिद्रता है। रंगीन चश्मा पहन रखा है हमने और उसी से देखते हैं जिससे हर जगह वही रंग दिखाई पड़ता है। पीलिया के मरीज को हर चीज पीली दिखाई पड़ती है। ठीक इसी तरीके से विकृत दृष्टिकोण होने पर हमें हर जगह नरक दिखाई पड़ता है। द्वेष दिखाई पड़ता है, दुश्मन दिखाई पड़ते हैं। आशंकाएँ और भय दिखाई पड़ते हैं। झाड़ी में से भूत और रस्सी में से साँप निकलने वाली बात आप सबने सुनी होगी। ये आशंकाएँ केवल हमारे विकृत मस्तिष्क के चिह्न हैं जो अगर ठीक न हुए तो दिक्कत पड़ेगी। इन्हें हमें दूर करना होगा। जहाँ मन की इच्छानुकूल परिस्थितियों के होने की बात है, वहाँ उससे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हम अपने मस्तिष्क

के चिंतन करने के तरीके को सुधार लें। चिंतन करने का तरीका अगर सँभाला-सुधारा जा सके तो सामान्य परिस्थितियों में भी हँसी-खुशी से भरी हम जिंदगी काट सकते हैं। संत इमर्सन कहते थे कि हमें नरक में भेज दीजिए, हम वहीं अपने लिए स्वर्ग बना लेंगे। बात सही है। शालीनता का दृष्टिकोण रखने वाले, ऊँचे दृष्टिकोण रखने वाले, वास्तविकता को समझने वाले इस दुनिया में हर समय हँसते-हँसाते हुए पाए जा सकते हैं।

तीसरा क्षेत्र परिवार संस्था का है जो कितना अस्त-व्यस्त दिखाई पड़ता है। जिस परिवार में हम रहते हैं, भगवान ने उसका गठन स्वर्गीय आनंद के लिए किया है, लेकिन उसके लाभों से हम वंचित रह जाते हैं। एक बाड़े में जिस तरीके से बहुत सी भेड़ें रहती हैं, एक जेलखाने में जैसे बहुत से कैदी रहते हैं, उसी तरीके से हम अपने कुटुंबियों के बीच में निर्वाह करते रहते हैं। कहने को तो संबंधी कहे जाते हैं, रिश्तेदार भी कहे जाते हैं, पर जैसा स्नेह,

सौजन्य, सद्भाव, सेवा, सहकारिता इत्यादि का वातावरण होना चाहिए था, कुटुंबों में कहीं दिखाई नहीं पड़ता। इसका कारण यह है कि कुटुंबों को बनाने और उनकी देखभाल करने वाले यह भूल जाते हैं कि उनके पारिवारिक उत्तरदायित्व क्या हैं? पारिवारिक उत्तरदायित्वों को लोगों ने यह समझ रखा है कि हम अपने कुटुंबियों को प्रसन्न बनाने के लिए उनकी इच्छानुकूल चलें। उनके लिए धन-दौलत, सामान इकट्ठा करें जिससे कि वे प्रसन्न रह सकें। यह सब करने से कुछ लाभ नहीं होता, वरन इससे मनुष्यों की आदतें खराब होती चली जाती हैं। घर के वातावरण में विलासिता की, हरामखोरी की दुष्प्रवृत्तियाँ पैदा होती हैं और उसके दुष्परिणाम दुर्व्यसनों के रूप में और दूसरी बुराइयों के रूप में देखने को मिलते हैं।

जरूरत इस बात की है कि हम अपने पारिवारिक उत्तरदायित्वों को समझें और उनको भावनात्मक तथा मानसिक संपदाएँ दें। हम उनको

श्रमशील बनने की आदत सिखाएँ, स्वच्छता की, व्यवस्था की आदत सिखाएँ। नियमितता का, समय का पालन करना सिखाएँ। भाषण में मधुरता और शिष्टाचार का समावेश करना सिखाएँ। ये बातें तभी सिखाई जा सकती हैं, जब हम स्वयं अपने आप को उस ढाँचे में ढाल लें। अपने आप को अच्छे ढाँचे में ढालकर के हम अपने समीपवर्ती लोगों को अपेक्षाकृत अच्छा शिक्षण दे सकते हैं। परिवारों में अगर हम अपने आप को उदाहरण रूप में प्रस्तुत कर सकें तो यही हमारे घर और कुटुंब नर-रत्नों की खदान बन सकते हैं और उनमें से एक से एक बढ़िया हीरक-एक से एक बढ़िया आदमी निकल सकते हैं। भूत-पलीतों के रहने लायक खंडहर जिस तरीके से होते हैं, प्रायः हमारे परिवारों की स्थितियाँ वही हैं। न उनमें शांति है और न चैन। घर में जाते तो हैं, पर भाग खड़े होने का मन करता है। यह पारिवारिक जीवन में आनंद के अभाव के कारण है और उस अभाव का कारण है—हमारा विकृत दृष्टिकोण।

दृष्टिकोण को अगर हम सुधार पाएँ तो घर का रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति बड़ा आनंददायक मिले। उनके साथ सहकारिता का जीवन जीते हुए सद्भावना के आधार पर हम अपने घरों में स्वर्गीय आनंद लेने में समर्थ हो सकते हैं।

जहाँ कहीं भी हम देखते हैं, प्रत्येक क्षेत्र में मुसीबतें ही दिखाई पड़ती हैं। आर्थिक कठिनाइयों से आज हर आदमी दुखी पाया जाता है। सोचा जाता है कि यदि कुछ बाहरी आमदनी हो जाए तो शायद आर्थिक कठिनाइयाँ दूर हो जाएँ। लेकिन यह बात एक सीमा तक ही सही है, सौ फीसदी नहीं। अगर हम ज्यादा आमदनी नहीं भी बढ़ा सकते हों तो भी ऐसे उपाय हैं कि हम आर्थिक तंगी से बच सकते हैं। जितनी अपनी आमदनी है उसके हिसाब से बजट बनाकर चलें तो यह पूरी तरह से संभव है कि हम ठीक तरीके से जीवनयापन कर लें। जीवन तो बहुत तरीके से जिया जा सकता है। कोई जरूरी नहीं कि कोई बहुत खरचीला जीवन ही जिएँ। दुनिया में

ऐसे बहुत से आदमी हैं जो कम से कम में गुजारा कर लेते हैं। क्या हमारे लिए यह संभव नहीं है? अगर हम खरच से कम आमदनी करते हैं तो कम खरच में गुजारा करें और आर्थिक कठिनाई जैसी मुसीबतों से सहज ही छुटकारा पाएँ। हम अपनी योग्यता बढ़ाएँ, श्रम करने की सामर्थ्य बढ़ाएँ। योग्यता बढ़ाने से, श्रम ज्यादा करने से पैसा ज्यादा मिलता है। आलस्य और प्रमाद जिन लोगों पर छाया रहता है, दरिद्रता स्थायी रूप से उनके पास बनी रहेगी। शारीरिक दरिद्रता आलस्य के रूप में और मानसिक दरिद्रता प्रमाद के रूप में जिन लोगों के पास है, कितना ही धन होने पर भी वे गरीबों जैसा, दरिद्रों जैसा जीवन ही जिएँगे।

सामाजिक जीवन में हम देखते हैं कि किस तरीके से चारों ओर विकृतियाँ फैली हुई हैं, आपा-धापी और खींच-तान मची हुई है। समाज में रहकर मनुष्य को कितना उन्नतिशील और प्रसन्न रहना चाहिए था, पर यही समाज विकृतियों-विषमताओं

के कारण नरक बना हुआ है। जाति-पाँति के नाम पर किस तरीके से आदमी एकदूसरे से अलग होते जाते हैं। लिंगभेद के नाम पर, स्त्री-पुरुषों के नाम पर एक को ऊँचा और एक को नीचा बनाकर किस तरीके से विषमता पैदा की जाती है। परदाप्रथा के नाम पर पचास फीसदी जनता को अपने मानवोचित अधिकारों से किस तरीके से वंचित किया जाता है? विवाह-शादियों पर खरच होने वाली धनराशि किस तरीके से हमें गरीब और बेईमान बनाती है? दहेज एवं मृत्युभोज के नाम पर कितना पैसा खरच होता है? भिक्षा व्यवसाय में लाखों की तादाद में आदमी कैसे अपने समय को खराब करते और अपनी दीनता का परिचय देते हैं? कुरीतियाँ, बेईमानियाँ, उद्दंडताएँ, धूर्तताएँ चारों ओर फैली पड़ी हैं। किस तरह से इनका उन्मूलन संभव है? इनको कानून बनाकर पुलिस के द्वारा भी दूर नहीं किया जा सकता। यदि इनको कभी दूर किया जा सकेगा तो आध्यात्मिकता के सिद्धांतों को आदमी के भीतर जमा

करके ही दूर किया जा सकेगा। आदमी की धर्मधारणा यदि जीवंत की जा सके, तो समाज में असंख्य प्रकार की विकृतियाँ जो संघर्ष पैदा करती हैं, विग्रह पैदा करती हैं, द्वेष, कलह और मनोमालिन्य पैदा करती हैं, इन सबसे पिंड छुड़ाया जा सकता है। अगर आदमी अध्यात्मवादी दृष्टिकोण लेकर चले और समाज में आध्यात्मिकता की मान्यताओं की स्थापना की जा सके, तो इन समस्त विकृतियों का उन्मूलन सहज संभव है।

हम देखते हैं कि व्यक्तिगत जीवन के जितने भी पहलू हैं, पक्ष हैं वे सभी असंगत एवं विकृत हैं। इसका कारण आध्यात्मिक दृष्टि की कमी है। उसी से परिस्थितियाँ विकृत होती हैं। सामूहिक रूप से सामाजिक जीवन में भी यही बातें ज्यों की त्यों घुमा-फिराकर दिखाई पड़ती हैं। हम राष्ट्रीय-अंतराष्ट्रीय क्षेत्रों पर निगाह डालते हैं तो दिखाई पड़ता है कि युद्धों की विभीषिकाएँ अपना मुहँ बाए खड़ी हैं। अगर हम युद्धों के द्वारा एकदूसरे को

परास्त करके विजय प्राप्त करने की बात को दिमाग में से निकाल दें और इस बात को स्वीकार लें कि न्याय के आधार पर जो कुछ उचित होगा, हम उसी को स्वीकार करेंगे। तब फिर निश्चित है कि युद्धों की समाप्ति हो जाएगी और इस मद के लिए संसार भर में जो पैसा लग चुका है या लग रहा है या लगने जा रहा है उसे रोका जा सकेगा और बचे हुए धन एवं जन-शक्ति को जनकल्याण में लगाया जा सकेगा। युद्धों में लगने वाली विपुल संपदा को यदि सिंचाई, स्वास्थ्य एवं शिक्षा व्यवस्था जैसे कामों में लगाया जा सके तो दुनिया में कितनी खुशहाली आ जाए, कितनी निश्चिंतता हो जाए? अगर युद्ध के सिद्धांत को मन में से निकाल दिया जाए और न्याय के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया जाए तो आदमी भय और आशंका से सहज ही छुटकारा पा सकता है।

किसी भी क्षेत्र में हम विचार करते हैं तो एक ही बात मालूम पड़ती है कि मनुष्य की भौतिक अथवा आध्यात्मिक समस्याओं के समाधान और किसी

तरीके से नहीं हो सकते। ईश्वरप्राप्ति के लिए बहुत सारे जप, अनुष्ठान, दान, पुण्य किए जाते हैं, किंतु यह भुला दिया जाता है कि अपने दृष्टिकोण एवं चरित्र को उच्चस्तरीय बना लेने पर ही अपने मन के स्वच्छ दर्पण में भगवान दिखाई पड़ेंगे। लोग अपने को साफ नहीं करते, मन को धोने की कोशिश नहीं करते और भगवान को, देवी-देवताओं को प्रसन्न करने और बुलाने की कोशिश करते हैं। अपने भीतर का आकर्षण और चुंबकत्व न हुआ तो हम भगवान को कैसे पा सकेंगे? स्वर्ग-मुक्ति कैसे पा सकेंगे? सद्गति और शांति कैसे पा सकेंगे?

व्यक्तिगत जीवन की तरह ही हम यह देखते हैं कि इस दुनिया को सुंदर और समुन्नत बनाने के लिए क्या किया जाए? इसके लिए यों तो असंख्य योजनाएँ बनती हैं, जिसमें भौतिक सुविधाओं के संवर्द्धन का ध्यान रखा जाता है। यदि इन अनेक योजनाओं को बनाने के साथ-साथ इस बात का भी ध्यान रखा जा सके कि व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की परंपराओं में

समता के सिद्धांत, एकता के सिद्धांत, शुचिता के सिद्धांतों को समाविष्ट करें, तब फिर दुनिया में कोई कमी नहीं रह सकेगी। फिर जितने साधन आज हैं, उसी से बड़े मजे में हम गुजारा कर सकेंगे। संसार में अगर एकता की दिशा में हम चलने लगें तो न जाने कितनी प्रसन्नतादायक परिस्थितियाँ पैदा हो जाएँ। अगर दुनिया की भाषा एक हो जाए, अपनी-अपनी अलग-अलग भाषाओं के लिए लड़ाई-झगड़ा करना हम लोग बंद कर दें, तब फिर एक भाषा से ज्ञान की वृद्धि में कितनी सहायता मिल सकती है। संस्कृति अगर हम सबकी एक हो तो आदमी अलग-अलग धर्म के नाम पर आपस में टक्कर क्यों मारे? अगर दुनिया में एक राष्ट्र हो और सारे के सारे देश उसी के प्रांत मान लिए जाएँ तो राष्ट्रों के बीच कलह कैसे पैदा हो? समता के सिद्धांत को यदि सभी मान लें तो जाति के नाम पर, लिंग के नाम पर, अर्थ विषमता के नाम पर जो चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है, उसका ठहरना कैसे संभव हो सकेगा? नरक हमारे भीतर है

और स्वर्ग हमारे भीतर है, दानव हमारे भीतर है और देव हमारे भीतर है। देव को जगाया, उभारा जा सके तो इसी धरती पर हम स्वर्ग के दर्शन कर सकते हैं। यही है वह अध्यात्म जिसके द्वारा मनुष्य के सामने उपस्थित असंख्य समस्याओं का समाधान सन्निहित है।

देवत्व का स्वरूप

देवत्व का स्वरूप है—व्यापकता। एक को बहुत में देखने की सद्भाव भरी सत्प्रवृत्ति। वासनात्मक अतिवाद के कारण होने वाले शारीरिक और मानसिक विनाश की अपरिमित क्षति देव चक्षुओं से स्पष्ट दीख पड़ती है। इसी प्रकार तृष्णाग्रस्त होकर अधिक संचय एवं उपभोग से अपनी अहंकारिता एवं विलासिता का बढ़ना और दूसरों का उस परिकर से वंचित रहना उसे काँटे की तरह चुभता है। देव-मानस सोचता है कि अपने श्रम, संयम, मनोयोग, प्रभाव, वर्चस्व एवं धन का लाभ यदि संकीर्ण स्वार्थपरता के क्षेत्र से बाहर तक जाने दिया जाए तो

उससे कितने बड़े परिमाण में प्रयोजन पूरे हो सकते हैं। यह तुलनात्मक विचार करते ही देव-मानव को यही सूझ सूझती है कि जीवन के साथ जुड़ी हुई उपलब्धियों का उपयोग, जीवनक्रम को आदर्श और अनुकरणीय बनाने में किया जाए। शरीर और परिवार के लिए सुविधाएँ संचित करते रहने की लोभ, मोहग्रसित क्षुद्रता से ऊपर उठा जाए और क्षमताओं तथा संपदाओं के रूप में जो कुछ उपलब्ध है उसे व्यापक क्षेत्र में सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ाने में लगाया जाए। देव मान्यता यही है। देवत्व इसी स्तर की गतिविधियाँ अपनाने को उत्कंठित रहता है। ऐसे चिंतन में ही उसे रस आता है और ऐसे कर्तृत्व में ही उसे संतोष मिलता है।

असुरत्व और देवत्व में निरंतर संघर्ष इसलिए होता रहा है कि जीवन-संपदा पर अधिकार जमाने के लिए दोनों की प्रबल चेष्टा रहती है। देवत्व की माँग यह है कि दिव्य जीवन जिया जाए। अपने आचरण अनुकरणीय रहें। असुरता तात्कालिक वासना

और तृष्णा की तृप्ति चाहती है। अधिकाधिक इंद्रिय उपभोग की वासनात्मक लिप्सा हर घड़ी छाई रहती है। उसी की उधेड़बुन का ताना-बाना चलता रहता है। तरह-तरह के व्यंजन, कामक्रीड़ा के प्रयोग एवं दृश्य, श्रव्य, स्पर्शजन्य विलास प्रयोजन कैसे पूरे हों? इसके सपने सँजोए और घरोंदे बनाए जाते हैं। इससे थोड़ी फुरसत मिलती है तो धन कमाने, अमीरी का दर्प दिखाने वाले ठाठ-बाट बढ़ाने के लिए प्रयत्न चल पड़ते हैं। जीवन-संपदा इन्हीं लोभ और मोह के, वासना-तृष्णा के प्रयोजनों में खरच हो जाए यह असुरता की परिधि और प्रेरणा है।

देवत्व ऐसी क्षुद्रता की बालक्रीड़ा में सीमाबद्ध नहीं रहना चाहता, उसे बड़े प्रयोजन पूरे करने की आकांक्षा बेचैन किए रहती है। यही अंतर्द्वंद्व देवासुर संग्राम है जो प्रत्येक विचार और प्रत्येक कार्य में अपने-अपने पक्ष समर्थन में निरत रहते हैं। भोजन करते समय यह खींच-तान देखी जा सकती है। एक ओर स्वादिष्ट किंतु गरिष्ठ हानिकारक पदार्थ

और दूसरी ओर कम स्वाद के किंतु सात्त्विक पदार्थ सामने होते हैं। दोनों ही थाली में सामने रखे हैं किसे ग्रहण किया जाए? किसे छोड़ा जाए? इसमें भीतर ही भीतर अंतर्द्वंद्व चलता है। यही देवासुर संग्राम है। जिस पक्ष की प्रबलता होगी उसी की बात चलेगी। जो दुर्बल होगा वह कल्पना-जल्पना करता रह जाएगा। थाली के मोर्चे पर देव जीते या दैत्य इसका निर्णय आसानी से किया जा सकता है।

धनोपार्जन में नीति-अनीति, कर्म में श्रमशीलता और आलस्य-प्रमाद की, चिंतन में विकारी एवं आदर्शवादी विचारों की, उपयोग में संयम-असंयम की, आचरण में आदर्शवादिता एवं भ्रष्टता की, दर्शन में आस्तिकता-नास्तिकता की आकाँक्षाएँ हर घड़ी हर क्षण मल्लयुद्ध करती हैं। यही देवासुर-संग्राम है। परस्पर विरोधी दिशा में चल रही खींचतान में से कब, किसकी विजय हुई, यह आत्मनिरीक्षण यदि सतर्कतापूर्वक जारी रखा जाए तो स्पष्ट हो जाएगा कि

अंतर्द्वंद्व के महाभारत में किस पक्ष की सेना हारती और किसकी जीतती है ?

व्यक्तिगत जीवन की विचारणा एवं क्रियाशीलता के क्षेत्र से आगे बढ़कर परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व के व्यापक क्षेत्र में भी देवासुर संग्राम चलता है। गरम युद्ध और शीत युद्ध के मोर्चे हर क्षेत्र में गढ़े होते हैं। इन्हें मूकदर्शक की तरह तो कोई जीवित मृतक ही देखते रह सकता है जीवंत चेतना को किसी का पक्षधर बनना पड़ता है। जो नीति का पोषण नहीं करता वह परोक्ष रूप से अनीति का समर्थक है। इस प्रकार हर व्यक्ति अपने हर चिंतन एवं कर्म में प्रकारांतर से देवता एवं असुरों की सेना का सैनिक एवं समर्थक बनकर दोनों में से किसी न किसी को सफल एवं असफल बनाने का प्रयत्न कर रहा होता है। देवासुर संग्राम मल्लयुद्ध की तरह अथवा तीर-तलवारों से तो कभी-कभी ही देखने में आता है, पर वह सत्प्रवृत्तियों में टकराव की तरह सर्वत्र होता रहता है। पुराणों में इसी सूक्ष्म स्थिति को

विभिन्न कथानकों के रूप में चित्रित किया है। देवताओं और असुरों के नाम की तथा घटनाक्रमों की भिन्नता के रूप में व्यापक क्षेत्र में फैली हुई प्रवृत्तियों के बीच होते रहने वाले संघर्ष की ही चर्चा है।

लोक-प्रवाह में आसुरी तत्त्वों का बाहुल्य रहने से बहुत मोर्चों पर दैत्य ही जीतता है। देवत्व दुर्बल पड़ता और हारता है पर यह जीत-हार अस्वाभाविक है। आत्मचेतना का ईश्वरीय अंश मूलतः अति समर्थ है। सत्य में हजार हाथियों के बराबर बल बताया जाता रहा है। सामान्य विवेक सहज ही देवत्व का पक्षधर होता है। चोरों के झुंड से पूछा जाए कि चोरी अच्छी होती है या ईमानदारी तो उनमें से प्रत्येक ईमानदारी के पक्ष में ही अपना मत देगा। वह ईमानदार दुकान से सौदा खरीदता, ईमानदार नौकर तलाश करता है और ईमानदारी से ही व्यवहार करने का इच्छुक रहता है। चोर होते हुए भी ईमानदारी का यह सहज सरल समर्थन बताता है कि देव पक्ष कितना प्रबल है; जो विपक्षी के मुँह से भी अपना समर्थन

करा लेता है। व्यभिचारी भी अपनी पत्नी या बेटी को उस मार्ग पर नहीं चलने देना चाहता। अपने घर में सदाचारियों को ही प्रवेश देता है। स्वयं व्यभिचारत व्यक्ति भी जब सदाचार का समर्थन करता है तो स्पष्ट हो जाता है कि शक्ति किसकी प्रबल है ? सारा संसार व्यवहारतः असत्यवादी हो जाए तो भी बिना समर्थन का सत्य भी अपनी वरिष्ठता की विजय-ध्वजा फहरा रहा होगा और असत्यवादियों के मुँह से भी सत्य की गरिमा गाई जा रही होगी। यह तथ्य बताते हैं कि देवत्व की मूल शक्ति कितनी प्रबल और प्रचंड है ? अस्तु, देवताओं की पराजय अस्थायी ही होती है, उसका निराकरण जल्दी ही हो जाता है। देवासुर संग्राम के कथानकों में असुरों की विजय कभी भी स्थायी नहीं हुई है, उन्हें फिर पराजित होना पड़ा है और देवताओं ने अपना पूर्वपद फिर से प्राप्त कर लिया है।

पराजय को विजय में परिणत करने का आधार इन कथानकों में ईश्वरीय विशिष्ट सहायता ही रही है।

इसे हम सत्साहस के रूप में अवतरित हुआ देख सकते हैं। व्यक्ति के जीवन में जब देवत्व के पक्ष समर्थन की अदम्य अभिलाषा जग पड़े और वह अवांछनीयताओं से लड़ पड़ने का आक्रोश बनकर सत्प्रवृत्तियों को मूर्त रूप देने में जुट पड़े तो समझना चाहिए कि यह मन:स्थिति प्रत्यक्ष ही ईश्वरीय अवतरण और देव वरदान है। यही बात किसी सत्समर्थन में उभरे हुए प्रचंड आंदोलन के संबंध में कही जा सकती है। अपने-अपने समय की विकृतियों का निराकरण करने का नेतृत्व श्रेय किन्हीं विशेष व्यक्तियों को ही मिलता है पर यथार्थ यह है कि लोकमानस में उठती हुई संतुलन की वृत्ति के रूप में अवतार सत्ता का दिव्य अवतरण होता है। उसमें नीति के प्रति आग्रह होता है। उसी आधार का नेतृत्व प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्ति तथा घटनाक्रम दृश्यमान होते हैं। इन्हीं को अवतार की लीला कहा जा सकता है। श्रेय किन्हें मिला किन्हें नहीं, इससे कुछ अंतर नहीं आता है। लंकाविजय का श्रेय राम, लक्ष्मण, अंगद, हनुमान या

नल, नील में से किसको दिया जाए; इस पर विवाद करना व्यर्थ है। महाभारत की भूमिका में कृष्ण या अर्जुन में से किसे श्रेय मिले ? इस झंझट में पड़ने से कोई लाभ नहीं। नियति के उभार किसी को भी अपना वाहन बना सकते हैं। ईश्वर व्यक्ति नहीं शक्ति है। वह दिव्य चेतना का उभार बनकर व्यष्टि अथवा समष्टि में अवतरित होता है। समय की विकृतियों का समाधान और सुकृतियों का अभिवर्द्धन करके संतुलन सही करना ही उसका लक्ष्य होता है। भगवान की लीलाएँ इसी प्रयोजन के लिए उभरती और लीला करती दिखाई पड़ती हैं।

देवासुर संग्राम के पुराण वर्णित कथानक ऐतिहासिक है या नहीं इसमें माथापच्ची व्यर्थ है। इनमें यह शाश्वत तथ्य सुनिश्चित रूप से भरा पड़ा है कि दैवी और आसुरी प्रकृति के आकर्षण प्राणी को खींचते हैं। इनमें से देवत्व का पक्षधर बनने और ईश्वर की शरण में जाना ही श्रेयस्कर है। आज की बात समाप्त।

॥ ॐ शांतिः ॥ ❐

हमारा युग निर्माण सत्संकल्प

यह सत्संकल्प सभी आत्म निर्माण, परिवार निर्माण एवं समाज निर्माण के साधकों को नियमित पढ़ते रहना चाहिए। इस संकल्प के सूत्रों को अपने व्यक्तित्व में ढालने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। इन सूत्रों की व्याख्या 'इक्कीसवीं सदी का संविधान' पुस्तक में पढ़ें।

- ✧ हम ईश्वर को सर्वव्यापी, न्यायकारी मानकर उसके अनुशासन को अपने जीवन में उतारेंगे।
- ✧ शरीर को भगवान का मंदिर समझकर आत्मसंयम और नियमितता द्वारा आरोग्य की रक्षा करेंगे।
- ✧ मन को कुविचारों और दुर्भावनाओं से बचाए रखने के लिए स्वाध्याय एवं सत्संग की व्यवस्था रखे रहेंगे।
- ✧ इंद्रिय संयम, अर्थ संयम, समय संयम और विचार संयम का सतत अभ्यास करेंगे।
- ✧ अपने आपको समाज का एक अभिन्न अंग मानेंगे और सबके हित में अपना हित समझेंगे।
- ✧ मर्यादाओं को पालेंगे, वर्जनाओं से बचेंगे, नागरिक कर्त्तव्यों का पालन करेंगे और समाजनिष्ठ बने रहेंगे।
- ✧ समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को जीवन का एक अविच्छिन्न अंग मानेंगे।
- ✧ चारों ओर मधुरता, स्वच्छता, सादगी एवं सज्जनता का वातावरण उत्पन्न करेंगे।

- ✧ अनीति से प्राप्त सफलता की अपेक्षा नीति पर चलतेहुए असफलता को शिरोधार्य करेंगे।
- ✧ मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी उसकी सफलताओं, योग्यताओं एवं विभूतियों को नहीं, उसके सद्विचारों और सत्कर्मों को मानेंगे।
- ✧ दूसरों के साथ वह व्यवहार नहीं करेंगे, जो हमें अपने लिए पसंद नहीं।
- ✧ नर-नारी के प्रति परस्पर पवित्र दृष्टि रखेंगे।
- ✧ संसार में सत्प्रवृत्तियों के पुण्य प्रसार के लिए अपने समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ एवं धन का एक अंश नियमित रूप से लगाते रहेंगे।
- ✧ परंपराओं की तुलना में विवेक को महत्त्व देंगे।
- ✧ सज्जनों को संगठित करने, अनीति से लोहा लेने और नवसृजन की गतिविधियों में पूरी रुचि लेंगे।
- ✧ राष्ट्रीय एकता एवं समता के प्रति निष्ठावान रहेंगे। जाति, लिंग, भाषा, प्रांत, संप्रदाय आदि के कारण परस्पर कोई भेदभाव न बरतेंगे।
- ✧ मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है—इस विश्वास के आधार पर हमारी मान्यता है कि हम उत्कृष्ट बनेंगे और दूसरों को श्रेष्ठ बनाएँगे, तो युग अवश्य बदलेगा।
- ✧ 'हम बदलेंगे-युग बदलेगा', 'हम सुधरेंगे-युग सुधरेगा' इस तथ्य पर हमारा परिपूर्ण विश्वास है। ❑❑

मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)